दैनिक जागरण
विचार व्यवहार में उतरकर ही सार्थक बनता है

पक्षपाती रवैया

आम चुनावों के अवसर पर भारत में मानवाधिकारों के उल्लंघन को लेकर आई अमेरिकी विदेश विभाग की रिपोर्ट को खारिज करना आवश्यक था। यह अच्छा हुआ कि भारतीय विदेश मंत्रालय के प्रवक्ता ने इस रिपोर्ट को न केवल पक्षपातपूर्ण करार दिया, बल्कि यह भी कहा कि वह भारत के बारे में खराब समझ का परिचायक है। इस खराब समझ का परिचय अमेरिका के साथ अन्य पश्चिमी देश भी रह-रहकर देते रहते हैं। इन देशों की सरकारों के साथ सरकारी सहायता प्राप्त अथवा कथित रूप से स्वतंत्र संस्थाएं तो प्रायः भारत के बारे में ऐसा आकलन करती हैं, जो दुर्भावना से भी भरा होता है। कई बार तो उनकी यह दुर्भावना छिपती भी नहीं और ऐसी संस्थाएं उपहास का पात्र बनती हैं। निःसंदेह मानवाधिकारों एवं अन्य अनेक मामलों में भारत में सब कुछ ठीक नहीं, लेकिन क्या अमेरिका या यूरोप में सब चंगा है? निःसंदेह ऐसा भी नहीं है कि भारत में जब कहीं मानवाधिकारों का उल्लंघन या फिर किसी अन्य मोर्चे पर कोई समस्या उत्पन्न होती है तो उसकी अनदेखी कर दी जाती है और संबंधित संस्थाएं एवं अदालतें हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती हैं।

यह संदेह करने के अच्छे-भले कारण हैं कि अमेरिकी विदेश विभाग ने अपनी रिपोर्ट में मणिपुर का उल्लेख इसलिए किया, क्योंकि वह केवल यह जताना चाहता था कि वहां ईसाइयों के साथ ठीक व्यवहार नहीं हुआ। इस रिपोर्ट में जिस तरह राहुल गांधी की सदस्यता खारिज होने का जिक्र किया गया, वह भी सवाल खड़े करता है। एक तो राहुल अकेले ऐसे जनप्रतिनिधि नहीं, जिनकी सदस्यता खारिज हुई हो। ऐसे न जाने कितने जनप्रतिनिधि हैं। यह भी किसी से छिपा नहीं कि जिस तरह अदालत के आदेश से राहुल गांधी की सदस्यता गई, उसी तरह अन्य नेताओं की भी गई और उच्चतर न्यायालयों के आदेश से बहाल भी हो गई। क्या अमेरिका यह चाहता है कि भारत सरकार अदालतों को आदेश दे कि उन्हें कैसे फैसले देने चाहिए? समस्या यह नहीं कि अमेरिका या अन्य पश्चिमी देश समय-समय पर भारत की समस्याओं पर चिंता जताते हैं। समस्या इससे है कि वे कुछ चुनिंदा मामलों का उल्लेख करते हैं। इससे भी खराब बात यह है कि पश्चिमी देशों की संस्थाएं कभी यह बताती हैं कि भारत की तुलना में पाकिस्तान में लोग अधिक खुश हैं और कभी यह कि भारत में लोकतंत्र अंतिम सांसें ले रहा है। ऐसे हास्यास्पद शोध-सर्वेक्षण भारत के प्रति पश्चिम के दुराग्रह को ही अधिक दर्शाते हैं। एक बुरी बात यह भी है कि पश्चिमी मीडिया का एक हिस्सा भी भारत के प्रति दुराग्रह से भरा हुआ है। उसके रवैये से यदि कुछ स्पष्ट होता है तो यही कि उसे भारत का बढ़ता कद रास नहीं आ रहा। अच्छा हो कि पश्चिम यह समझे कि उसे दुनिया को अपने हिसाब से चलाने का अधिकार नहीं मिला हुआ है।

जिम्मेदार कौन

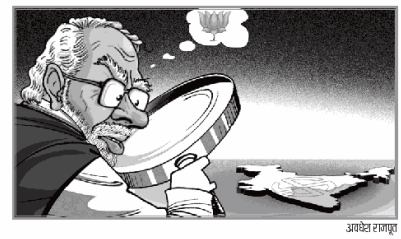

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ के जानकीपुरम विस्तार सेक्टर-10 में खुले मैनहोल में गिरकर आठ वर्षीय एक मासूम की मौत पूरे सरकारी सिस्टम को कठघरे में खड़ा करती है। यह मासूम अपनी बहनों के साथ भंडारे का प्रसाद लेने जा रहा था कि रास्ते में मैनहोल में गिर गया। राजधानी के भीतर एक मैनहोल तीन महीने तक खुला रहे और शिकायतों के बाद भी उसे बंद नहीं किया जाए तो लापरवाही और अकर्मण्यता का इससे बड़ा उदाहरण कुछ और नहीं हो सकता। ऐसी किसी भी घटना में सरकारी विभाग कार्यदायी एजेंसियों को पूरी तरह जिम्मेदार ठहराकर अपने बचाव में जुट जाते हैं। इस घटना में भी जलकल विभाग ने मैनहोल का रखरखाव करने वाली कंस्ट्रक्शन कंपनी को ही जिम्मेदार ठहराया है, लेकिन क्या अधिकारियों का कोई दायित्व नहीं होता? जलकल के अभियंताओं ने सारा ठीकरा ठेकेदार व सुपरवाइजर पर फोड़ दिया। जलकल विभाग की जिम्मेदारी है कि वह नगर में खुले मैनहोल की निगरानी कराए और यदि कहीं खुला है तो बंद कराए या मरम्मत कराए। इसलिए एक मासूम की मौत में जितनी कंस्ट्रक्शन कंपनी की लापरवाही है, उतनी ही जिम्मेदारी जलकल विभाग के अभियंताओं की भी बनती है। इंसानी जान अमूल्य होती है और यदि वह व्यवस्था की भेंट चढ़ जाए तो इसकी भरपाई नहीं की जा सकती। सिर्फ लखनऊ ही नहीं, उत्तर प्रदेश के अन्य महानगरों में भी मैनहोल में गिरकर इस तरह की दुखदायी घटनाएं होती रही हैं। सीवर की सफाई करने के दौरान सफाईकर्मियों की मौत की तो कई घटनाएं हो चुकी हैं। इस तरह की असामयिक मौत की घटनाओं पर पूर्व में हाई कोर्ट भी चिंता जता चुका है, लेकिन प्रभावी कदम नहीं उठाए जा सके हैं। लखनऊ की घटना में संवेदनहीनता का भी एक पहलू जुड़ा है कि जिस समय बच्चा मैनहोल में गिरा और उसकी बहनें उसे बचाने का प्रयास करने लगीं तो कोई मदद के लिए नहीं आया। मानवीयता पर इससे बड़ा धब्बा कुछ और नहीं हो सकता।

दक्षिण में भाजपा की संभावनाएं

डा. एके वर्मा

पीएम मोदी ने राजग के लिए चार सौ पार का जो नारा दिया है, उसकी संभावना बंगाल के अलावा दक्षिण के राज्यों पर भी टिकी है

अवधेश राजपूत

लोकसभा चुनावों में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने भाजपा के लिए 370 और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन यानी राजग के लिए 400 पार सीटों का लक्ष्य रखा है। इससे पहले 2019 के चुनाव में भाजपा को 303 और राजग को 352 सीटें मिली थीं। अब अकाली दल, अन्नाद्रमुक आदि राजग में नहीं हैं। इस तरह मोदी ने अपने लक्ष्य में राजग के लिए 2019 के मुकाबले करीब 50 सीटों की बढ़ोतरी की है, लेकिन ये सीटें आएंगी कहां से? ऐसा लक्ष्य निर्धारित करने में या तो मोदी ने अपने कार्यकर्ताओं के उत्साहवर्धन के लिए 'निशाने से तीर ऊपर मारो, वर्ना वार खाली जायेगा' का सिद्धांत अपनाया है या फिर यह उनका वस्तुनिष्ठ आकलन हो सकता है। इन 50 सीटों की संभावना बंगाल के अतिरिक्त दक्षिणी राज्यों-तमिलनाडु, केरल, कर्नाटक, तेलंगाना और आंध्र प्रदेश पर टिकी है।

कर्नाटक में भाजपा का बड़ा जनाधार है। पिछले साल विधानसभा चुनावों में हारने के बावजूद भाजपा का जनाधार 38 प्रतिशत पर बना रहा, जो 2018 के बराबर था, जब भाजपा जीती थी। 2019 के लोकसभा चुनावों में भाजपा को कर्नाटक में 25 सीटें और 51.38 प्रतिशत वोट मिले थे। इस बार भी इसमें कोई विशेष कमी आने के आसार नहीं, क्योंकि कर्नाटक की राजधानी बेंगलुरु देश की सिलिकान वैली कही जाती है। वैश्विक स्तर पर उसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। जिस प्रकार मोदी ने देश को वैश्विक स्तर पर स्थापित किया है और भारतीय प्रौद्योगिकी की मार्केटिंग की है, कर्नाटक का मतदाता उनके नेतृत्व में देश का उज्ज्वल भविष्य देखता है। इस बार जद-एस के साथ भाजपा का गठबंधन वोक्कालिगा मतदाताओं को और अधिक साधने में सहायक हो सकता है।

केरल में पिछले लोकसभा चुनाव में भाजपा का जनाधार 13 प्रतिशत रहा, जिसके कुछ बढ़ने की संभावना है। केरल में 49 प्रतिशत अल्पसंख्यक (मुस्लिम, ईसाई) और 51 प्रतिशत हिंदू हैं। अल्पसंख्यक मतदाता कांग्रेस नेतृत्व वाले यूडीएफ तथा हिंदू मतदाता वाम नेतृत्व वाले एलडीएफ को पारंपरिक रूप से समर्थन देते आए हैं। केरल में साम्यवादियों के नेतृत्व में सामाजिक सुधार आंदोलन हुए, जिसने जाति प्रथा में सुधार को लक्ष्य किया, जिससे हिंदू समाज की दलित और पिछड़ी जातियों का झुकाव वाम दलों की ओर हो गया। केरल में एलडीएफ और यूडीएफ ने राजनीतिक विमर्श सेक्युलरिज्म, समान नागरिक संहिता, नागरिकता संशोधन कानून, संविधान और लोकतंत्र पर खतरा, अनुच्छेद-370 आदि पर केंद्रित कर रखा है। इसकी काट के लिए भाजपा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कई संगठन सक्रिय हैं। अपने स्तर पर सोशल इंजीनयरिंग की जा रही है। इससे केरल में पार्टी का जनाधार बढ़ सकता है, लेकिन अभी सीटों के लिए भाजपा को शायद प्रतीक्षा करनी होगी।

तमिलनाडु में मोदी संभवतः इतिहास रचने जा रहे हैं। राज्य में भाजपा का खास जनाधार नहीं रहा है। पिछले लोकसभा चुनावों में द्रमुक ने 27 सीटों पर चुनाव लड़कर सभी सीटें अपने नाम कीं। पिछले चुनाव में भाजपा को मात्र 3.66 प्रतिशत वोट मिले थे। हालांकि वह गठबंधन की वजह से कम सीटों पर चुनाव लड़ी थी। आखिर पांच वर्षों में कौन सी क्रांति हो गई, जिससे भाजपा उम्मीदें लगाए बैठी है? 1967 से तमिलनाडु की राजनीति का आधार 'द्रविड़-राजनीति' बन गई और चुनाव द्रमुक-अन्नाद्रमुक के बीच सिमट गया, मगर लगता है कि अब जनता द्रविड़ पार्टियों से ऊब चुकी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि द्रमुक काडर आधारित सशक्त पार्टी है और अभी तमिलनाडु में उसका कोई प्रभावी विकल्प नहीं, लेकिन पार्टी पर भ्रष्टाचार एवं परिवारवाद में लिप्त होने के आरोप हैं। अन्नाद्रमुक का जन्म द्रमुक से ही हुआ और एमजी रामचंद्रन और जयललिता ने इसे जन-जन तक पहुंचाया। हालांकि जयललिता की मृत्यु के बाद पार्टी में नेतृत्व संघर्ष के चलते वह कमजोर हुई। इससे तमिल राजनीति में एक रिक्तता आई, जिसे भाजपा ने भरने का प्रयास शुरू किया है। भाजपा ने तमिलनाडु की नौ छोटी पार्टियों से गठबंधन भी किया, जिससे संदेश गया कि भाजपा गरीबों, वंचितों के साथ है, जो चुनावों में सकारात्मक प्रभाव डाल सकता है।

तमिलनाडु की खासियत है कि जनता किसी एक पार्टी को एकमुश्त वोट करती है। 2014 में अन्नाद्रमुक 38 सीटें जीत गई और 2019 में स्टालिन के नेतृत्व में द्रमुक गठबंधन अधिकांश सीटें जीत गया। इस बार यदि द्रमुक के भ्रष्टाचार-परिवारवाद के विरुद्ध वोट पड़े होंगे और जनता को अन्नाद्रमुक का विकल्प भाजपा में दिखा होगा तो वह तमिलनाडु में अप्रत्याशित प्रदर्शन कर सकती है। तमिल राजनीति व्यक्ति केंद्रित भी रही है। मोदी के वैश्विक व्यक्तित्व ने भाजपा को अवसर दिया कि वह तमिल राजनीति में उन्हें भाजपाई राजनीति की धुरी बनाए। इसीलिए मोदी ने तमिलनाडु के कई दौरे किए। हर जगह तमिल चिंतक तिरुवल्लुवर और उनकी रचना तिरक्कुरल का उल्लेख किया। अपनी रैलियों में कामराज और एमजी रामचंद्रन के पोस्टर लगवाए। इन प्रयासों के बावजूद एक स्थानीय व्यक्तित्व चाहिए था, जो द्रमुक व अन्नाद्रमुक को कड़ी चुनौती दे सके। इसके लिए भाजपा ने एक कर्मठ, प्रभावशाली और पूर्व आइपीएस अधिकारी अन्नामलाई को पार्टी का प्रदेश अध्यक्ष बनाया। अन्नामलाई ने तमिलनाडु के सभी निर्वाचन क्षेत्रों की थाह ली। भाजपा की विचारधारा को स्थानीय भाषा में जनता को समझाया। भाजपा और अन्नाद्रमुक दोनों राष्ट्रवादी विचारधारा की पार्टी हैं, जिससे अन्नाद्रमुक समर्थकों को भाजपा में बेहतर विकल्प दिख रहा है। महिलाएं भी अन्नाद्रमुक से ज्यादा जुड़ी थीं व मोदी सरकार की महिला केंद्रित योजनाओं से भाजपा की ओर मुड़ी हैं। अन्नाद्रमुक की लोकप्रिय नेता रहीं जयललिता और मोदी के संबंध मधुर रहे।

तेलंगाना विधानसभा चुनाव में भाजपा को आठ सीटें और 14 प्रतिशत मत मिले थे। यहां भाजपा पिछले लोकसभा चुनाव में मिली चार सीटों और 19.5 प्रतिशत वोटों की तुलना में कहीं बेहतर प्रदर्शन करेगी। यही स्थिति आंध्र में है, जहां चंद्रबाबू नायडू की तेलुगु देसम पार्टी और पवन कल्याण की जनसेना के साथ से उसकी स्थिति बेहतर रहने के आसार हैं।

(लेखक सेंटर फार द स्टडी आफ सोसायटी एंड पालिटिक्स के निदेशक एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं)

response@jagran.com

अपने ही बुने जाल में फंसी कांग्रेस

अवधेश कुमार

आखिर कांग्रेस क्यों नहीं यह स्पष्ट करती कि वह मत-मजहब के आधार पर आरक्षण के विरुद्ध है?

प्रधानमंत्री मोदी ने कांग्रेस पर आरोप लगाया है कि वह एससी-एसटी एवं ओबीसी आरक्षण को मुस्लिम समुदाय को देना चाहती है। उनका यह भी कहना है कि संपत्तियों के सर्वे के पीछे भी ऐसा ही इरादा है। इस पर कहा जा रहा है कि वह ध्रुवीकरण चाहते हैं। प्रश्न है कि क्या प्रधानमंत्री ने जो आरोप लगाया, उसे सांप्रदायिक रंग देना माना जाए या उसके पीछे कुछ तथ्य भी हैं? कांग्रेस नेता प्रधानमंत्री पर हमले तो कर रहे हैं, किंतु यह कहने को तैयार नहीं कि वे मुस्लिम समुदाय को आरक्षण देने के पक्ष में नहीं हैं। कांग्रेस यह भी स्पष्ट नहीं करती कि वह मत-मजहब के आधार पर आरक्षण के विरुद्ध है। चूंकि कांग्रेस अपने घोषणा पत्र में आरक्षण की सीमा बढ़ाने का वचन देते हुए यह सुनिश्चित करने को कहती है कि अल्पसंख्यकों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, सार्वजनिक कार्य अनुबंध, कौशल विकास, खेल और सांस्कृतिक गतिविधियों में बिना किसी भेदभाव अवसरों का उचित हिस्सा मिले, इसलिए उसकी मंशा पर प्रश्न उठता है। इसकी एक पृष्ठभूमि है।

कांग्रेस सरकारों ने पहले भी मजहब के आधार पर मुस्लिम समुदाय को आरक्षण देने की पहल की है। चूंकि पंथ-मजहब के आधार पर आरक्षण मान्य नहीं, इसलिए ओबीसी आरक्षण में से ही कर्नाटक में मुसलमानों को चार प्रतिशत आरक्षण दिया गया। केंद्र में संप्रग शासन के दौरान आंध्र की कांग्रेस सरकार ने मुस्लिम समुदाय को आरक्षण देने का कानून बनाया। वह न्यायालय में टिक नहीं सका। आज भी अनुसूचित जनजाति से मतांतरित होकर मुसलमान या ईसाई बनने वालों को आरक्षण का लाभ मिलता है। वे अल्पसंख्यक होने का भी लाभ पाते हैं और अनुसूचित जनजाति का भी। कांग्रेस यह तो कह रही है कि इसमें मुस्लिम शब्द कहीं नहीं है, पर अल्पसंख्यक का अर्थ क्या है? मनमोहन सरकार ने सच्चर समिति गठित की थी, जिसने अपनी रिपोर्ट में मुसलमानों को अनुसूचित जातियों से भी खराब स्थिति में बता दिया और उनके सशक्तीकरण के नाम पर जो अनुशंसाएं कीं, उनमें सरकारी नौकरियों व शैक्षणिक संस्थानों में आरक्षण भी शामिल था। मनमोहन सरकार के समय ही रंगनाथ मिश्र समिति ने एससी-एसटी और ओबीसी से मतांतरण करने के बावजूद मुसलमानों को आरक्षण देने की पैरवी की।

मुस्लिम वोट बैंक पर कांग्रेस की नजर। फाइल

उसने 27 प्रतिशत ओबीसी आरक्षण में से 6 प्रतिशत मुसलमानों को देने की सिफारिश की।

30 नवंबर, 2006 को सच्चर समिति की सिफारिशें आईं और इसके नौ दिन बाद मनमोहन सिंह ने राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में कहा, 'मेरा मानना है कि हमारी सामूहिक प्राथमिकता कृषि, सिंचाई, जल संसाधन, स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण बुनियादी ढांचे में निवेश के साथ ही एससी/एसटी/ओबीसी, अल्पसंख्यकों, महिलाओं और बच्चों का उत्थान है। हमें ऐसी नई योजनाएं बनानी होंगी, जिनसे अल्पसंख्यकों खासकर मुस्लिमों को विकास में समान भागीदारी मिल सके। देश के संसाधनों पर उनका पहला दावा होना चाहिए।' कांग्रेस इस बयान को तोड़-मरोड़ कर पेश करने की बात तो करती है, लेकिन इसकी अनदेखी करती है कि इसमें स्पष्ट रूप से अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमान शब्द है। सच यह है कि 2004 में सत्ता में आने के साथ ही कांग्रेस की यह धारणा बनी कि मुस्लिम मत खिसकने के कारण ही वह उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में हाशिए पर गई और उसकी जगह सपा, बसपा, राजद आदि ने ले ली। इसी कारण उस दौरान अल्पसंख्यक आयोग को संवैधानिक दर्जा देने से लेकर अल्पसंख्यक मंत्रालय का गठन हुआ। 2014 के आम चुनाव के लिए आचार संहिता लागू होने से ठीक एक दिन पहले मनमोहन सरकार ने दिल्ली की 123 संपत्तियां दिल्ली वक्फ बोर्ड को सौंप दीं। बोर्ड ने 27 फरवरी, 2014 को इन संपत्तियों पर दावा किया था। इसके सातवें दिन ही मंत्रालय ने उसके पक्ष में फैसला कर दिया। मोदी सरकार में न्यायालय द्वारा इन संपत्तियों को मुक्त कराया गया। दिल्ली उच्च न्यायालय का कहना था कि बिना किसी आधार सरकारी संपत्तियों को वक्फ के हवाले किया गया था। संप्रग शासन के समय अनेक राज्यों में इसी तरह के निर्णय हुए, जिनका कोई आधार नहीं था।

हाल में बंगाल से भी ओबीसी आरक्षण पर एक चौंकाने वाला आंकड़ा आया। वहां 179 जातियां ओबीसी में शामिल हैं, जिनमें 118 मुस्लिम और 61 हिंदू हैं। केंद्र सरकार ने जब राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग को संवैधानिक दर्जा दिया तो उसने राज्यों को भी पिछड़े वर्ग की सूची में जातियों को शामिल करने का अधिकार दे दिया। ममता सरकार ने 71 जातियां शामिल कीं, जिनमें 65 मुस्लिम थीं। जब पिछड़ा वर्ग आयोग ने इसका कारण पूछा तो कहा गया कि पिछड़े हिंदुओं ने इस्लाम ग्रहण कर लिया है। जब यह पूछा गया कि कहां-कहां ऐसा हुआ तो उत्तर आया कि इसकी जानकारी नहीं है।

कांग्रेस को जिस तरह तेलंगाना एवं कर्नाटक में मुसलमानों का वोट मिला, उससे उसे लगता है कि मुस्लिमपरस्त नीतियों से ही उसका खोया मुस्लिम वोट बैंक वापस आ सकता है, लेकिन यह कैसे मानें कि सारे मुस्लिम आर्थिक-सामाजिक रूप से पिछड़े हैं? जबकि देश में मुस्लिम नवाबों और जमींदारों की बड़ी संख्या रही है। उनकी ताकत इतनी थी कि उन्होंने देश का विभाजन करा दिया। निःसंदेह पिछड़े मुसलमानों का समग्र विकास होना चाहिए, पर सभी मुसलमानों को पिछड़ा कैसे माना जा सकता है? जाति व्यवस्था में हाशिए पर गए समूहों के कारण आरक्षण का प्रविधान लाया गया था। संविधान में धर्म यानी मत-मजहब के आधार पर आरक्षण की कोई व्यवस्था न थी और न हो सकती है। ऐसी किसी व्यवस्था के नतीजे खतरनाक होंगे।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

अहिंसा का मर्म

इस संसार में मनुष्य नाना प्रकार की परिस्थितियों में फंसकर जीवन में समस्याओं का अंबार लगा लेता है। इसके समाधान के लिए भगवान महावीर ने मानवता का परिचय पंचशील सिद्धांतों से कराया। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य उसके आधार स्तंभ हैं। इसका सार यही है कि किसी भी परिस्थिति में सत्य का साथ न छोड़ना, हिंसा से बचकर रहना, जितना स्वयं के पास उपलब्ध है उससे संतुष्टि, सजीव तथा निर्जीव वस्तुओं का अधिक संग्रह न करना, मोक्षप्राप्ति हेतु ब्रह्मचर्य का पालन। इन विचारों को व्यवहार में लाकर जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है।

इसमें अहिंसा जैसा पहलू तो अत्यंत ही उपयोगी है। इस संदर्भ में गांधी ने कहा था, 'मैं विश्वासपूर्वक कहता हूं कि महावीर स्वामी का नाम इस समय यदि किसी सिद्धांत के लिए पूजा जाता है तो वह अहिंसा ही है। मैंने जिन अलग-अलग धर्मों का अध्ययन किया है और उनके जो सिद्धांत मुझे योग्य मालूम हुए उनका आचरण भी मैं करता रहा हूं। मैं अपने को एक पक्का सनातनी हिंदू मानता हूं, परंतु मैं नहीं समझता कि जैन धर्म दूसरे धर्मों की अपेक्षा अलग है। मैं जानता हूं कि जो सच्चा हिंदू है वह जैन है और जो सच्चा जैन है वह हिंदू है। प्रत्येक धर्म की श्रेष्ठता का पता इससे चलता है कि उस धर्म में अहिंसा का तत्व कितनी मात्रा में है और इस तत्व को यदि किसी ने अधिक प्रसारित किया है तो वह महावीर स्वामी ही थे।'

अहिंसा विज्ञान को वस्तुतः पर्यावरण का विज्ञान भी कहा गया है। महावीर मानते थे कि जीव और अजीव की सृष्टि में जो अजीव तत्व है अर्थात मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति उन सभी में भी जीव है, अतः इनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पंचशील के सिद्धांतों को यदि व्यवहार में उतारकर उपयोग में लाया गया तो पारिवारिक विघटन को दूर किया जा सकेगा। अहिंसा के मूल्यों के आधार पर वैश्विक शांति की स्थापना संभव है।

डा. सौरभ जैन

मतदान के दायित्व को समझें नागरिक

डा. मोनिका शर्मा

लोकसभा चुनाव में सभी मतदाता अपना मत देना सुनिश्चित करें, ताकि हमारा लोकतंत्र मजबूत हो

आज लोकसभा चुनाव के दूसरे चरण का मतदान है। पहले चरण के मतदान में देश के कई हिस्सों में कम वोटिंग होना राजनीतिक दलों के लिए ही नहीं, बल्कि समग्र समाज के लिए चिंता और चर्चा का विषय है। पहले चरण की वोटिंग में औसत 62 प्रतिशत मतदान दर्ज किया गया। इसके चलते चुनाव आयोग भी मतदान प्रतिशत बढ़ाने के लिए अपनी रणनीति में सुधार करने की योजना बना रहा है। चुनाव आयोग ने इंटरनेट मीडिया के मंचों पर भी आमजन से घर से निकलने और मतदान करने के लिए कहा है।

वस्तुतः चुनाव आयोग के प्रयासों के साथ ही आमजन को भी अपनी जिम्मेदारी समझनी होगी। देश की सरकार चुनने के दायित्व निर्वहन में मतदाताओं को उदासीन न होकर उसमें बढ़-चढ़कर भागीदारी निभानी चाहिए। आम जीवन से जुड़ी गतिविधियां आवश्यक हैं, परंतु इनका जिम्मेदार नागरिक होने का दायित्व निभाने में बाधा बनना वाकई तकलीफदेह है। त्योहार, शादी-ब्याह या मौसमी स्थितियों को पोलिंग बूथ तक न पहुंचने की वजह बनाना उचित नहीं है। विशेषकर महानगरों और शहरी क्षेत्रों में मतदान के दिन को आराम के दिन के रूप में मानने की प्रवृत्ति बेहद चिंतनीय है। चुनाव आयोग की रिपोर्ट के अनुसार पिछले लोकसभा चुनाव में भी देश के लगभग एक तिहाई लोगों ने अपने मत का उपयोग नहीं किया था। मताधिकार का प्रयोग नहीं करने वालों में युवा, अमीर और शहरी जनसंख्या वाले लोग भी शामिल थे। कहना गलत नहीं होगा कि विशाल जनसंख्या और विविधतापूर्ण संस्कृति वाले हमारे देश में चुनाव आयोग के प्रयासों और योजनाओं को मतदान के प्रति आमजन की प्रतिबद्धता का भी साथ मिलना चाहिए।

भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था की मजबूती के लिए सभी मतदाताओं द्वारा अपने मताधिकार का प्रयोग करना आवश्यक है। मतदान प्रत्येक भारतीय नागरिक का संवैधानिक अधिकार भी है और कर्तव्य भी। इस अधिकार के वैकल्पिक होने का अर्थ नहीं है कि अपने आंगन को संवारने-सहेजने वाले जन-प्रतिनिधियों को चुनने में रुचि न ली जाए। मणिपुर हाई कोर्ट द्वारा एक महत्वपूर्ण आदेश में कहा गया है कि चुनाव में वोट डालने का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 19(1)(ए) के तहत मतदाताओं के भाषण व अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार का ही एक हिस्सा है। ऐसे में मतदान करना अपना और देश का भविष्य चुनने के समान है। देश की जनतांत्रिक व्यवस्था के सम्मान और बतौर नागरिक अपनी स्वतंत्रता एवं मान को कायम रखने के लिए 18 वर्ष से अधिक उम्र के हर भारतीय के मन में यह लोकतांत्रिक दायित्व निभाने की प्रतिबद्धता आवश्यक है। इससे हमारा लोकतंत्र भी मजबूत होगा।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

पश्चिम से लें सकारात्मक प्रेरणा

'सैम पित्रोदा का सुझाव' शीर्षक से प्रकाशित संपादकीय टिप्पणी पढ़ी। इंडियन ओवरसीज कांग्रेस के अध्यक्ष और राहुल गांधी के सलाहकारों में गिने जाने वाले सैम पित्रोदा ने अमेरिका की तर्ज पर भारत में भी विरासत टैक्स लागू करने की वकालत की है। हालांकि बाद में उन्होंने अपनी सफाई भी पेश की, लेकिन इस मुद्दे पर चुनावी माहौल गरमा गया है। आदर्श स्थिति यही है कि हमें पाश्चात्य देशों में प्रचलित कुछ व्यवस्थाओं से सीखने और उन्हें अपने परिवेश में ढाल कर लागू करने की आवश्यकता पर अवश्य विमर्श करना चाहिए, परंतु कभी भी उनकी नकल नहीं करनी चाहिए, क्योंकि प्रत्येक देश की भौगोलिक जलवायु, सामाजिक और आर्थिक स्थिति एवं आबादी भिन्न होती है। एक व्यवस्था एक देश के लिए सफल है तो उसके लिए अनेकों अन्य कारक होते हैं और आवश्यक नहीं है कि वही व्यवस्था अन्य देशों के लिए भी उपयुक्त हो। वैसे भी विरासत टैक्स अमेरिका के कुछ ही राज्यों में लागू है, जिसे राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त नहीं है। इस बीच एक महत्वपूर्ण प्रश्न यही है कि हम अधिकांश मामलों में पाश्चात्य देशों में प्रचलित ऐसी व्यवस्थाओं पर विमर्श करने की ही बात करते हैं जिससे आम नागरिक नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है? क्यों नहीं हम पाश्चात्य देशों में प्रचलित ऐसी व्यवस्थाओं पर विमर्श करने/लागू करने की बात करते हैं जिससे आम नागरिक सकारात्मक रूप से प्रभावित होता है? क्यों नहीं हम, न्यायिक सुधार, पुलिस सुधार, वृद्धों के लिए सामाजिक और आर्थिक सुरक्षा जैसे संवेदनशील मुद्दों पर राष्ट्रीय विमर्श की बात करते?

कृष्ण मोहन अग्रवाल 'यक्ष', गौतम बुद्ध नगर

खेल और विज्ञान में तरक्की

भारत लगभग सभी क्षेत्रों में विकास कर रहा है। आम जनता केवल क्रिकेट तक सीमित रह गई है, इसलिए और खेलों की तरफ ध्यान नहीं जाता। शतरंज में तो क्रांति आ गई है। पूरी दुनिया में सर्वाधिक 83 ग्रैंडमास्टर भारत में हैं। पांच ने तो अभी समाप्त हुए कैंडिडेट फाइनल में शानदार प्रदर्शन किया। 17 साल के गुकेश ने टूर्नामेंट जीत कर इतिहास रच दिया। ठीक यही शानदार स्थिति बैडमिंटन, बाक्सिंग, शूटिंग व तीरंदाजी में है। महिला और पुरुष बैडमिंटन में शूटिंग, तीरंदाजी में युवा होनहार खिलाड़ियों की भरमार हो गई है। ओलिंपिक, एशियाड में खिलाड़ियों को चुनने के लिए बड़ा पूल है। मेडल लेने के लिए भारत में पहले यही कमी थी, जिसके कारण पदक बहुत कम आते थे। यह हर्ष का विषय है कि भारत में अब खेल संस्कृति शुरू हो चुकी है। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी का तो 2036 में ओलिंपिक आयोजन करने का विजन है। यदि यह संभव हो पाया तो खेल संस्कृति और अधिक विकसित होगी। ठीक यही स्थिति विज्ञान और तकनीकी शोध की है। विज्ञान शोध में देश की जीडीपी का एक प्रतिशत भी खर्च नहीं होता। इसके बावजूद विज्ञान व तकनीकी शोध उल्लेखनीय हो रहा है। शोधों के कारण ही भारत रक्षा उत्पादन में न केवल आत्मनिर्भर बन रहा है, अपितु बहुत से देशों को निर्यात भी कर रहा है। इसरो की उपलब्धियों से तो नासा व पूरा विश्व चकित है।

सीपी बंसल, दिल्ली

स्वच्छ छवि वालों को वोट

लोकसभा के लिए पहले चरण का चुनाव संपन्न हो चुका है और दूसरे चरण का चुनाव आज है। अब देखना यह है कि पांच साल में क्या परिवर्तन आया है और विपक्ष कहां है। पिछले लोकसभा चुनाव में कांग्रेस को बुरी तरह हार का सामना करना पड़ा था। वस्तुतः वर्ष 2014 से लोकसभा चुनाव का सारा गणित बदल गया है। दो बार से पहले नंबर पर रही भाजपा तीसरे टर्म में भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए जीत की उम्मीद कर रही है। इसका एक बड़ा कारण यह भी है कि सरकार की भ्रष्टाचार के विरुद्ध मुहिम से लोगों में जागरुकता आई है। बीते एक दशक में केंद्र सरकार पर भ्रष्टाचार का कोई मामला नहीं सामने आया है। देश में यह एक बहुत बड़ा बदलाव देखने को मिला है।

कांतिलाल मांडोत, नई दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

अमर उजाला

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का

निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक

स्थापना वर्ष : 1948

नई दिल्ली ■ शुक्रवार, 26 अप्रैल 2024

प्यार वह स्थिति है, जिसमें आपके लिए दूसरे व्यक्ति की खुशी जरूरी होती है।
-रॉबर्ट ए. हेनलेन, *अमेरिकी लेखक*

देश में मलेरिया उन्मूलन परियोजना के तीसरे व अंतिम चरण की शुरुआत के साथ माना जा सकता है कि करीब सौ साल पुरानी इस बीमारी के विरुद्ध लड़ाई अंतिम दौर में पहुंच गई है। पर 2030 तक इसके पूर्ण खात्मे के लिए सामुदायिक भागीदारी के साथ उपचार में व्याप्त असमानताओं को दूर करने की जरूरत है।

मलेरिया से मुक्ति

केंद्र सरकार द्वारा 12 राज्यों को मलेरिया से मुक्त करने के लिए देश में मलेरिया उन्मूलन परियोजना के तीसरे व अंतिम चरण की शुरुआत के साथ ही यह माना जा सकता है कि करीब सौ साल पुरानी इस बीमारी के विरुद्ध लड़ाई अपने अंतिम दौर में पहुंच गई है। दरअसल, प्लाज्मोडियम परजीवी के कारण होने वाला मलेरिया संक्रमित मादा एनाफिलीज मच्छर के काटने से फैलता है, जो खासकर ग्रामीण इलाकों के लिए, जहां स्वास्थ्य देखभाल तक समुचित पहुंच नहीं है, एक गंभीर स्वास्थ्य चुनौती बना हुआ है। उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने 1953 में राष्ट्रीय मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रम शुरू किया, जो घरों के भीतर डीडीटी छिड़कने पर केंद्रित था, जिससे अगले पांच वर्षों में मलेरिया के मामलों में आश्चर्यजनक कमी देखी गई। इससे उत्साहित होकर 1958 में ज्यादा महत्वाकांक्षी राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम शुरू किया गया, जिससे मलेरिया में कमी तो आई, लेकिन मच्छरों में दवाओं को लेकर प्रतिरोधक क्षमता विकसित होने से 1967 के बाद मलेरिया के मामले फिर बढ़ने लगे, जिसके बाद सरकारी प्रयासों का फोकस एक बार फिर रोग 'उन्मूलन' के बजाय 'नियंत्रण' पर हो गया। वैश्विक मलेरिया कार्यक्रम के लक्ष्यों के अनुरूप मलेरिया उन्मूलन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम (2016-2030) के कारण ही 2015 से 2022 के बीच भारत में मलेरिया के मामलों में करीब 85 फीसदी की कमी आई है, जिसकी तारीफ विश्व स्वास्थ्य संगठन भी कर चुका है। मलेरिया उन्मूलन परियोजना का तीसरा चरण अप्रैल, 2024 से मार्च, 2027 तक सर्वाधिक प्रभावित राज्यों में राष्ट्रीय वेक्टर जनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम की निगरानी में चलाया जाएगा। इस संभावना के बावजूद कि वर्ष के अंत तक देश के 28 राज्यों को मलेरिया से मुक्ति मिल सकती है, इस बीमारी से निपटने में आ रही चुनौतियों को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। रैपिड डायग्नोस्टिक टेस्ट (आरडीटी) तक सीमित पहुंच, दवाओं को लेकर प्रतिरोधी क्षमता

का विकास, जागरूकता की कमी के साथ ही सबसे बड़ी परेशानी है कि अब तक इसकी कोई प्रामाणिक वैक्सीन नहीं बन पाई है। इसके अलावा, जैसा लैंसेट का अध्ययन बताता है, मौसम में आ रहे बदलाव भी मलेरिया की दृष्टि से खतरनाक हो सकते हैं। 2027 तक मलेरिया मुक्त होने और 2030 तक इसे पूरी तरह खत्म करने के लिए शीघ्र निदान और उपचार तो सर्वोपरि है ही, यह भी समझना होगा कि सामुदायिक भागीदारी के बगैर कोई भी स्वास्थ्य हस्तक्षेप प्रभावी नहीं हो सकता। मलेरिया की रोकथाम, पहचान और उपचार सेवाओं तक पहुंच में व्याप्त असमानताओं को दूर करने की भी तत्काल आवश्यकता है, जिसे इस वर्ष के विश्व मलेरिया दिवस की थीम भी रेखांकित करती है।

इस प्यार को क्या नाम दें

निस्संदेह, सभ्य समाज की जिम्मेदारी है कि वह दो वयस्कों के प्रेम-संबंध के बीच मजहब या जाति की दीवार कभी खड़ी नहीं होने दे। परंतु छल-कपट और अपनी मजहबी पहचान छिपाकर बनाया गया रिश्ता, किसी भी सूरत में प्रेम नहीं कहा जाएगा।

'अगर यह लव जिहाद नहीं है, तो क्या है? उसने कबूल किया कि वह मेरी बेटी से प्यार करता था और जब मेरी बेटी ने इन्कार कर दिया, तब उसने उसे मार डाला। लव जिहाद के लिए वे अच्छे परिवारों की लड़कियों को निशाना बनाते हैं। फैयाज मेरी बेटी का मतांतरण करना चाहता था। नेहा की हत्या *द केरल स्टोरी* की तरह है।' मीडिया के समक्ष यह आक्रोश कर्नाटक स्थित हुबली-धारवाड़ नगर निगम में कांग्रेस के पार्षद निरंजन हिरेमथ ने प्रकट किया है। गत 18 अप्रैल को उनकी बेटी नेहा की उसके सहपाठी मोहम्मद फैयाज ने सरेआम कई बार चाकुओं से गोदकर हत्या कर दी। इसका वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल है। हत्याकांड कितना भयावह था, वह नेहा की पोस्टमार्टम रिपोर्ट से स्पष्ट है। इसके अनुसार, फैयाज ने नेहा पर 30 सेकंड में 14 बार चाकू से वार किए थे और यहां तक कि उसका गला काटने का भी प्रयास किया था।

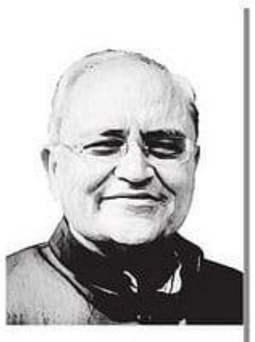

बलबीर पुंज
भाजपा के पूर्व उपाध्यक्ष एवं पूर्व राज्यसभा सदस्य

यह विडंबना है कि निरंजन हिरेमथ उस दल के सदस्य हैं, जो मुखर होकर वर्षों से 'लव-जिहाद' और उस पर आधारित फिल्म *द केरल स्टोरी* को 'इस्लामोफोबिया' से प्रेरित कल्पना और भाजपा-संघ का प्रोपेगेंडा बता रहे हैं। जब केरल स्थित कुछ चर्च संगठनों ने अपने समाज में जागरूकता फैलाने हेतु पिछले दिनों फिल्म *द केरल स्टोरी* को कई स्थानों पर प्रदर्शित किया और जब सार्वजनिक चैनल दूरदर्शन ने पांच अप्रैल को इस फिल्म का प्रसारण किया, तब भी वामपंथियों के साथ कांग्रेस ने इसका विरोध किया था। वही तेवर नेहा हिरेमथ हत्याकांड में दिख रहा है।

हालिया दिनों में 'लव-जिहाद' की शिकार केवल नेहा ही नहीं है। इस नृशंस हत्या से स्तब्ध कर्नाटक की एक अन्य हिंदू छात्रा ने जब अपने प्रेमी आफताब के साथ संबंध तोड़े, तो इससे गुस्साए आफताब ने हमला करके उसे घायल कर दिया। पीड़िता के अनुसार, उसकी मुस्लिम सहेली ने उसे आफताब से मित्रता हेतु विवश किया था। इसके अतिरिक्त, प्रदेश

के ही बेलगावी में विवाहित दलित महिला ने रफीक और उसकी बेगम पर जबरन मतांतरण करने का आरोप लगाया है। पुलिस में दर्ज शिकायत के अनुसार, रफीक ने बहला-फुसलाकर अपनी बेगम के सामने पहले उसका बलात्कार किया, जिसकी तस्वीरें तक ली गईं। फिर उसे सिंदूर हटाने, बुर्का पहनने, नमाज अदा करने और अपने हिंदू पति को तलाक देकर इस्लाम कबूलने का दबाव बनाना और धमकाना शुरू कर दिया।

शेष भारत के अलग-अलग कोनों से भी ऐसे कई मामले सामने आए हैं, जिन्हें 'लव-जिहाद' के तौर पर परिभाषित किया जा रहा है। महाराष्ट्र के छत्रपति संभाजीनगर में ताहेर पठान के खिलाफ अपनी मजहबी पहचान छिपाकर 27 वर्षीय हिंदू युवती को प्रेमजाल में फंसाकर यौन-उत्पीड़न करने, उसका वीडियो बनाने, जबरन गौमांस खिलाने और मतांतरण करने का मामला दर्ज हुआ है। वहीं मध्य प्रदेश के गुना में अयान पठान पर पड़ोस की एक हिंदू युवती ने प्रेम के नाम पर उसे बंधक बनाकर बलात्कार करने, बेल्ट-पाइप से बुरी तरह से पीटने, उसके जख्मों पर नमक-मिर्च डालने और चीखने से रोकने के लिए होंठों को फेवीक्विक से चिपकाने का आरोप लगाया है।

अतीत में कई मुस्लिम शासकों द्वारा इस्लाम के प्रचार-प्रसार हेतु डराने-धमकाने और हिंसा के उदाहरण मिलते हैं। अब 'तकैयाह' प्रथा (पवित्र धोखा) के अंतर्गत झूठ बोलकर और छल-फरेब से मतांतरण के मामले सामने आ रहे हैं। कुछ जानकारों ने ऐसे मजहबी चक्रव्यूह, जिसमें प्रेम के नाम पर गैर-मुस्लिमों से शारीरिक संबंध बनाकर मतांतरण का दबाव डाला जाता है, को सार्वजनिक विमर्श में 'लव-जिहाद' का नाम दिया है। यह शब्दावली विरोधाभासी है। इसमें प्रेम नहीं, अपितु इस्लाम का प्रसार करने की प्रतिबद्धता है, जिसमें 'सवाब' मिलने की अवधारणा है। शायद इसलिए कई बार 'लव-जिहाद' के मामलों में आरोपी या दोषी को पूरा समर्थन तक हासिल हो जाता है।

'लव-जिहाद' संज्ञा भले ही नई हो, परंतु हिंदू-ईसाई समाज कई दशकों से इस पर अपनी चिंता प्रकट कर रहे हैं। एक अमेरिकी ईसाई मिशनरी क्लिफर्ड मैनशार्ट ने 1936 में लंदन से प्रकाशित अपनी पुस्तक *द हिंदू-मुस्लिम प्रॉब्लम इन इंडिया* के पृष्ठ 48 पर हिंदू महिलाओं को चुराने और बहकाने की कोशिशों का उल्लेख किया है। गत वर्ष ब्रिटेन की तत्कालीन गृहमंत्री स्वेला ब्रेवरमैन ने कहा था—'पाकिस्तानी मूल के मुसलमान श्वेत ब्रितानी लड़कियों से उनकी मुश्किल परिस्थितियों के दौरान बलात्कार करते है और ड्रग्स देते हैं।' रॉचडेल (2008-12) और रॉदरहैम (1970-2014) में गैर-मुस्लिम युवतियों (अधिकांश ईसाई और नाबालिग) के भयावह यौन उत्पीड़न—इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं, जिसमें पाकिस्तान और अफगान मूल के कई नागरिक दोषी पाए गए थे। कुछ वर्ष पहले ब्रिटेन स्थित एक सिख संगठन ने भी दावा किया था कि वर्ष 1960 से स्थानीय हिंदू-सिख युवतियों का मुस्लिम युवकों द्वारा यौन-शोषण हो रहा है। तब इस मामले को ब्रिटेन में लेबर पार्टी की सांसद सारहा चैंपियन ने भी जोर-शोर से उठाया था।

आखिर यह कैसी मानसिकता है? *डेमोग्राफिक इस्लामिजेशन : नॉन-मुस्लिम्स इन मुस्लिम कंट्री* नामक दस्तावेज में फ्रांसीसी समाजशास्त्री और यूरोपीय विश्वविद्यालय में प्रवासन नीति केंद्र के निदेशक फिलिप फर्ग्यूस कहते हैं, 'प्रेम अब सतत इस्लामीकरण की प्रक्रिया में वही भूमिका निभा रहा है, जो अतीत में बलपूर्वक किया जाता था।' ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में इस्लामी इतिहासकार क्रिश्चियन सी. साहनर ने अपनी पुस्तक *क्रिश्चियन मार्टर्स अंडर इस्लामः रिलीजियस वॉयलेंस ऐंड मेकिंग ऑफ द मुस्लिम वर्ल्ड* में लिखा है, 'इस्लाम शयन कक्ष के माध्यम से ईसाई दुनिया में फैला।'

निस्संदेह, सभ्य समाज की जिम्मेदारी है कि वह दो वयस्कों के प्रेम-संबंध के बीच मजहब या जाति की दीवार कभी खड़ी नहीं होने दे। परंतु छल-कपट और अपनी मजहबी पहचान छिपाकर बनाया गया रिश्ता, किसी भी सूरत में प्रेम नहीं कहा जाएगा। कोई आश्चर्य नहीं कि अपने अभियान में विफल होने या उसका भंडाफोड़ होने पर कथित 'प्रेमी' हिंसक हो जाते हैं और अपनी 'प्रेमिका/पत्नी' की हत्या करने में संकोच भी नहीं करते हैं।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

रमण महर्षि

मन को सांसारिक वस्तुओं की ओर भटकने नहीं देना चाहिए। दूसरे लोग कितने भी बुरे क्यों न हों, उनके प्रति घृणा नहीं रखनी चाहिए। जब 'मैं' का उदय होता है, तो सब उत्पन्न हो जाता है।

मन शांत हो तो हम कहीं भी रह सकते हैं

मन ज्ञान का साधन है। मन ही सभी गतिविधियों का आधार भी है। अगर मन शांत हो जाता है, तो वास्तविकता के रूप में दुनिया की धारणा समाप्त हो जाती है। और जब तक एक वास्तविकता के रूप में दुनिया की धारणा की प्रकृति समाप्त नहीं हो जाती, तब तक दृष्टि को स्वयं का वास्तविक स्वरूप प्राप्त नहीं होता है। मन आत्मा में निवास करने वाली एक अद्भुत शक्ति है। इसी से विचार उत्पन्न होते हैं। विचारों के अलावा मन नाम की कोई चीज नहीं है। इसलिए विचार को मन का स्वभाव कहा जाता है। गहरी नींद में कोई विचार नहीं होते, कोई संसार नहीं होता। जागृत और स्वप्न अवस्था में विचार भी हैं और संसार भी। जिस प्रकार मकड़ी जाल का धागा बुनती है, उसे अपने से बाहर निकालती है और फिर उसे अपने में समेट लेती है, उसी प्रकार मन संसार को अपने से बाहर निकालता है और फिर उसे अपने में समेट लेता है। जब मन स्वयं को छोड़ देता है, तो संसार प्रकट होता है। और जब संसार प्रकट हो जाता है, तो आत्मा प्रकट नहीं होती। और जब आत्मा प्रकट होती है, तो संसार प्रकट नहीं होता।

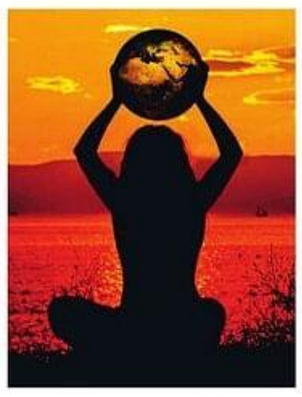

मन को ही सूक्ष्म शरीर या आत्मा कहा जाता है। जो शरीर में 'मैं' के रूप में उगता है, वह मन है। यदि कोई यह पूछे कि 'मैं' का विचार शरीर में सबसे पहले कहां से उठता है, तो उसे पता चलेगा कि यह हृदय में उठता है। हृदय ही मन की उत्पत्ति का स्थान है। मन में उठने वाले सभी विचारों में 'मैं' का विचार सबसे पहले आता है। इसके बाद ही अन्य विचार आते हैं। यह विचार कि 'मैं कौन हूं', अन्य सभी विचारों को नष्ट कर देगा और चिता को भड़काने वाली लकड़ी की तरह अंत में स्वयं जल जाएगा। तभी आत्म-साक्षात्कार होगा।

जब अन्य विचार उठते हैं, तो व्यक्ति को उनका पीछा नहीं करना चाहिए, बल्कि पूछना चाहिए कि वे किसके मन में आते हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कितने विचार उठते हैं। जैसे ही कोई विचार उठे, व्यक्ति को सचेत होकर पूछना चाहिए कि यह विचार किसके मन में उत्पन्न हुआ। इसका जो जवाब आएगा, वह यह होगा- 'मेरे'। इसके बाद कोई यह पूछे कि 'मैं कौन हूं', मन अपने स्रोत पर वापस चला जाएगा और जो विचार उठा, वह शांत हो जाएगा। इस तरह बार-बार अभ्यास करने से मन में अपने स्रोत में रहने की शक्ति विकसित हो जाएगी। जब मन हृदय में रहता है, तो 'मैं' चला जाएगा और जो भी अस्तित्व है, वह चमक जाएगा। कोई व्यक्ति उत्सुकतापूर्वक आत्म-ध्यान करेगा, निश्चय ही उसमें सुधार आने लगेगा। मन को सांसारिक वस्तुओं की ओर भटकने नहीं देना चाहिए। दूसरे लोग कितने भी बुरे क्यों न हों, उनके प्रति घृणा नहीं रखनी चाहिए। जब 'मैं' का उदय होता है, तो सब उत्पन्न हो जाता है, और जब 'मैं' शांत हो जाता है, तो सब शांत हो जाता है। यदि मन शांत हो जाए, तो व्यक्ति कहीं भी रह सकता है।

आत्मा ही ईश्वर है...

सूत्र

सत्य में जो केवल मौजूद है, वह आत्मा है। इसमें संसार, जीवात्मा और ईश्वर प्रकट होते हैं। आत्मा वह है, जहां जरा भी 'मैं' का विचार नहीं है। इसे ही मौन कहा जाता है। आत्मा ही संसार है, आत्मा ही 'मैं' है, आत्मा ही ईश्वर है। वह जो स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है, सबसे उत्कृष्ट भक्त होता है। स्वयं को समर्पित करने का अर्थ है स्वयं का निरंतर स्मरण करना।

दूसरा पहलू

जो लोग विभाजन के शिकार हुए, वे कहते हैं कि ये रेखाएं भले हमें नक्शे में न बांटती हों, पर आज भी हम इसे महसूस कर सकते हैं।

लोगों के जेहन में अमिट हैं विभाजन की रेखाएं

दुनिया के हर देश का इतिहास व मिजाज अलग-अलग है, लेकिन किसी देश की सीमा के पार जाना और उसे देखना कमोबेश सबके लिए उत्साह का क्षण होता है। लगभग सभी देशों की सीमा अलग-अलग संस्कृति, भाषा और जलवायु के आधार पर बंटी हुई है, लेकिन क्या आपने कभी सोचा है कि देशों के बीच सीमा-विभाजन में मुख्य कारक क्या होते हैं? अमेरिका के डी पॉल विश्वविद्यालय में भूगोलवेत्ता मैक्सिम सैमसन दुनिया की उन अनदेखी सीमाओं के बारे में बताते हैं, जो दुनिया के प्रति हमारे विचारों को एक नया दृष्टिकोण दे सकती हैं, जिन्हें सैमसन अदृश्य रेखाएं कहते हैं। उनके अनुसार, ये अदृश्य रेखाएं सीमाएं हैं, जो पृथ्वी के बारे में हमारी समझ को नया आधार दे सकती हैं। जो लोग किसी कारणवश विभाजन के शिकार हुए, उनका कहना है कि भले ही ये रेखाएं हमें नक्शे में न बांटती हों, पर आज भी हम इस विभाजन को महसूस कर सकते हैं।

मेंड भैरीवानी

1930 के दशक में शुरू हुई कलर-कोडिंग प्रथा में सरकार समर्थित बंधक ऋणदाता शामिल थे, जिसमें हरा रंग आकर्षक क्षेत्र को दर्शाता था और लाल रंग जोखिम वाले क्षेत्रों को, जहां अक्सर अश्वेत लोग रहते थे।

दूसरा उदाहरण डेट्रॉइट की 'आठ मील सड़क' है, जो शहर को नस्लीय आधार पर बांटती है। इसके दक्षिण में अफ्रीकी-अमेरिकी पड़ोस हैं और उत्तर में श्वेत समृद्ध क्षेत्र है।

अदृश्य रेखा को समझाने के लिए सैमसन अमेरिका के रेडलाइनिंग के इतिहास के बारे में बताते हैं कि '1930 के दशक में शुरू हुई इलाके की कलर-कोडिंग प्रथा में सरकार समर्थित बंधक ऋणदाता शामिल थे, जिसमें हरा रंग आकर्षक क्षेत्र को दर्शाता था और लाल रंग जोखिम वाले क्षेत्रों को, जहां अक्सर अश्वेत लोग रहा करते थे।' हालांकि वर्ष 1968 में फेयर हाउसिंग ऐक्ट के तहत रेडलाइनिंग को गैर-कानूनी घोषित कर दिया गया। यह विभाजन रेखा किसी भी नक्शे में नहीं मिलेगी, लेकिन वहां के लोगों के जेहन में आज भी ताजा है।

दूसरा उदाहरण, डेट्रॉइट की 'आठ मील सड़क' है, जो आज भी शहर को नस्लीय आधार पर बांटती है। इसके इतर सैमसन ने वालेस रेखा का एक प्राकृतिक उदाहरण दिया है, जो प्रकृतिवादियों और जीवविज्ञानियों द्वारा खींची गई थी। यह रेखा इंडोनेशिया के कुछ हिस्सों से गुजरती है और एशियाई व ऑस्ट्रेलियाई क्षेत्रों के बीच पाई जाने वाली वनस्पतियों एवं जीवों के अंतर को दर्शाती है।

एक अन्य अदृश्य रेखा क्विनलिंग-हुइहे है, जो चीन को दो अलग-अलग भागों दक्षिण में आर्द्र व उपोष्णकटिबंधीय और उत्तर में शुष्क व शीतोष्ण में बांटती है। सैमसन के अनुसार, अदृश्य सीमाओं के बारे में बात करने से शिक्षा, रोजगार के अवसरों और सार्वजनिक सेवाओं को उन लोगों तक पहुंचाया जा सकता हैं, जिनके साथ अदृश्य सीमा के आधार पर भेदभाव होता है। *(कन्वर्सेशन से)*

आंकड़े

राष्ट्रीय औसत से ज्यादा

अपने देश में औसत राष्ट्रीय प्रजनन दर दो है, लेकिन कई ऐसे राज्य हैं, जहां की कुल प्रजनन दर राष्ट्रीय औसत से अधिक है।

स्रोत : NFHS-5

लक्ष्य को पूरा करने की चाहत रखने वाले को हमेशा पूरा ध्यान उस पर ही रखना चाहिए। ऐसा करने से लक्ष्य कभी चूकता नहीं है।

लक्ष्य पर ध्यान

अंतर्यात्रा

संकलित

यह उन दिनों की बात है, जब स्वामी विवेकानंद अमेरिका में थे। एक दिन वह सैर के लिए निकले और घूमते-घूमते एक पुल के पास पहुंचे। तभी उनकी नजर पुल पर खड़े बच्चों पर गई। सभी बच्चे नदी में तैर रही वस्तुओं पर निशाना लगाने की कोशिश कर रहे थे। कई कोशिशों के बाद भी वे सही निशाना नहीं लगा पाए। स्वामी विवेकानंद की इच्छा हुई कि एक बार उन्हें भी कोशिश करनी चाहिए। उन्होंने बच्चों से बंदूक मांगी और खुद निशाना लगाने लगे। पहली बार में ही निशाना लगा लिया।

स्वामी के निशाने की कला को देखकर बच्चे हैरान रह गए। बच्चों ने उनसे पूछा कि आखिर वह सही निशाना लगा पाते हैं। सही तरीके से निशाना लगाने के लिए क्या करना चाहिए?

स्वामी विवेकानंद ने बच्चों को जवाब देते हुए कहा कि इस दुनिया में ऐसा कोई काम नहीं है, जो किया नहीं जा सकता। दुनिया में कोई भी काम असंभव नहीं है। बस अपना सारा ध्यान उस काम की तरफ लगाओ, जिसे तुम्हें करना है या जिसे तुम कर रहे हो। लक्ष्य पर ध्यान रखने से सफलता अवश्य मिलती है। उन्होंने आगे बताया कि अगर निशाना लगाते वक्त तुम्हारा सारा ध्यान उस पर होता, तो तुम निशाना ठीक तरीके से लगा पाते।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला

पुराने पन्नों से — 31 जनवरी, 1955

स्टील कारखाने खोलने पर रूस से समझौता

स्टील के कारखाने के खोलने का प्रश्न

रूस से पूर्ण समझौता

नई दिल्ली, १० जनवरी। भारत व रूस की सरकारों के बीच स्टील के नये कारखाने के निर्माण करने पर जो समझौता हुआ है उस पर मंगलवार को हस्ताक्षर हो जायेंगे।

बताया जाता है कि स्टील के कारखाने के बारे में जो मत भेद थे वे बातों के बाद समाप्त होंगये। समझौते पर हिन्दी

भारत और रूस की सरकारों के बीच स्टील के नए कारखाने खोलने पर समझौता हो गया है और उस पर कल हस्ताक्षर होंगे। यह कारखाना मध्य प्रदेश के बिसहाई नामक स्थान पर खोला जाएगा।

शहर-शहर कचरे के पहाड़

देश में हर साल 277 अरब किलो कचरा निकलता है, जिसमें से मात्र 70 फीसदी ही इकट्ठा होता है, और बहुत कम कचरे की रिसाइक्लिंग हो पाती है।

ज्ञानेंद्र रावत, *वरिष्ठ पत्रकार एवं पर्यावरणविद*

समस्या

दिल्ली में गाजीपुर लैंडफिल स्थित कचरे के पहाड़ में लगी आग फिलहाल बुझा दी गई है, लेकिन आग से उठे धुंए ने आसपास के इलाके के लोगों की सांस अटका रखी है। लोग आंखों में जलन व सांस लेने में दिक्कत महसूस कर रहे हैं। इस कचरे के पहाड़ की दुर्गंध तो बरसों से उनकी नियति बन चुकी है। इलाके के दिल के कुछ मरीज परेशानी के चलते घर छोड़ रिश्तेदारों के यहां चले गए हैं।

मौजूदा चुनावी माहौल में राजधानी दिल्ली के कूड़े के पहाड़ का मसला चर्चा का विषय बना हुआ है। अभी तक आग के कारणों का पता नहीं चल सका है। पुलिस और एफएसएल की टीमें जांच में जुटी हैं, लेकिन लैंडफिल साइट के प्रबंधन को लेकर दिल्ली नगर निगम की नीति पर लोगों ने सवाल उठाए हैं। उनका कहना है कि कचरे के पहाड़ में आग लगने की घटना कोई नई बात नहीं है, लेकिन इसे नियंत्रित करने के लिए कोई कदम नहीं उठाए जा रहे हैं। पिछले बीस वर्षों से कूड़े

के पहाड़ को खत्म करने के दावे किए जा रहे हैं, लेकिन कोई ठोस कार्यवाही नहीं होती है।

कचरे के पहाड़ की समस्या सिर्फ राजधानी दिल्ली या मुंबई महानगर तक सीमित नहीं है, बल्कि अब तो गुरुग्राम ने भी इस सूची में अपना नाम दर्ज करा लिया है। यहां बंधवाड़ी लैंडफिल साइट पर रोजाना फरीदाबाद और गुरुग्राम का 2,300 टन कचरा पहुंच रहा है और अक्सर आग लगने की घटनाएं होती हैं। यहां फिलहाल तकरीबन 16 लाख टन कूड़ा पड़ा है। बीते 24 दिनों में यहां 13 बार आग लगने की घटनाएं हुई हैं। लैंडफिल साइट के पास लोगों का रहना काफी मुश्किल होता जा रहा है, लेकिन लोग खून-पसीने की कमाई से अर्जित मकान छोड़ नहीं पा रहे हैं। यहां रहने वाले लोग बरसों से दिल, सांस, गले में खराश, दिमाग में सूजन आदि विभिन्न रोगों के चंगुल में हैं। खासतौर पर बच्चों, गर्भवती महिलाओं, हृदय और सांस के रोगियों के लिए यह स्थिति जानलेवा है।

दिल्ली में कचरे के पहाड़ में लगी आग से शहर में घुल रहे धुंए पर न केवल उपराज्यपाल, बल्कि दिल्ली के पर्यावरण मंत्री और सुप्रीम कोर्ट तक ने संज्ञान लेते हुए निगमायुक्त, प्रमुख सचिव व दिल्ली सरकार से जबाव मांगा है। सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि यह आश्चर्यजनक है कि राजधानी में प्रतिदिन निकलने वाले 11,000 टन ठोस कचरे में से 3,000 टन का उचित तरीके से निपटान नहीं किया जाता है। हैरानी की बात है कि ठोस कचरा प्रबंधन नियम 2016 को लागू हुए आठ साल हो गए हैं, लेकिन दिल्ली में इसका कोई पालन नहीं हो रहा है। नतीजतन कचरे का पहाड़ दिन-ब-दिन बढ़ता ही जाता है।

पूरे देश में हर साल 277 अरब किलो कचरा निकलता है, यानी प्रति व्यक्ति करीब 205 किलो कचरा निकलता है। इसमें से केवल 70 फीसदी ही इकट्ठा किया जाता है। बाकी जमीन और पानी में फैला रहता है। इकट्ठा किए गए कचरे में से आधा या तो खुले में फेंक दिया जाता है या उसे जमीन में दबा दिया जाता है। औद्योगिक कचरे के निपटान की जिम्मेदारी उद्योगों पर और घरों से निकले कचरे के निपटान की जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासन की होती है। देश में कुल कचरे में से सिर्फ पांचवें हिस्से की रिसाइक्लिंग हो पाती है।

खुले में फेंके कचरे में भारी मात्रा में निकल, जिंक, आर्सेनिक, कांच, क्रोमियम और दूसरी जहरीली धातुएं होती हैं, जो पर्यावरण और लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरे की वजह होती हैं। देश में सालाना जितनी जहरीली मीथेन उत्सर्जित होती है, उसमें से 20 फीसदी सिर्फ इन कचरे के ढेरों से निकलती है। अब छोटे शहर-कस्बों में भी में कचरे के लैंडफिलों की तादाद तेजी से बढ़ रही है। आने वाले दिनों में विकास की रफ्तार और बढ़ेगी, ऐसे में कई गुना कचरा बढ़ेगा। हमारे देश में अहमदाबाद, सूरत, नवी मुंबई, मैसूर और इंदौर ने कचरा संग्रह और उसके निपटान व स्वच्छता में अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है, जिनसे कुछ सीख ली जा सकती है।

कचरा प्रबंधन के मामले में हम दूसरे देशों से बहुत पीछे हैं। विश्व बैंक के अनुसार, 2030 तक भारत में हर साल निकलने वाला कचरा 388 अरब किलो हो जाएगा। इसलिए जरूरी है कि लोगों को घरों में ही अलग-अलग डस्टबिन में कचरा रखने के लिए जागरूक किया जाए, ताकि उसे रिसाइकल करने में आसानी हो। वैसे स्वच्छ भारत अभियान से स्थिति थोड़ी सुधरी जरूर है, पर अभी काफी कुछ करना बाकी है।

हिन्दुस्तान
1936
सत्य · सार्थक · सदैव

भाषा की मर्यादा

चुनावी भाषा और भाव की शिकायत चुनाव आयोग तक पहुंच गई है और इस लड़ाई में देश की दोनों प्रमुख पार्टियां आमने-सामने आ गई हैं। आज जब देश में दूसरे चरण का मतदान हो रहा है, तब दलों की बेचैनी को सहज ही समझा जा सकता है। भाजपा ने राहुल गांधी के भाषण की शिकायत की है, तो कांग्रेस ने भी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के भाषणों को आड़े हाथ लिया है। चुनाव आयोग ने अपनी तरफ से तल्खी न बढ़ाते हुए दोनों पार्टी के अध्यक्षों को नोटिस जारी किया है, हालांकि, इसकी आलोचना भी हो रही है और कुछ लोगों का मानना है, नोटिस दोनों दिग्गज नेताओं के नाम से जाना चाहिए था। खैर, चुनाव आयोग तक जो शिकायत पहुंची है, उसमें एक-दूसरे की सियासी भावना से आहत होने का मामला ज्यादा है। चुनाव में भावना पर प्रहार गलत नहीं है, पर उसकी अपनी सीमा होनी चाहिए। क्या चुनाव आयोग महासमर में उतर चुके नेताओं को समझा पाएगा? इतना तय है कि चुनाव आयोग विवाद को बढ़ाना नहीं चाहता है, इसलिए उसने अपने नोटिस में दोनों में से किसी नेता का नाम नहीं लिया है।

संभव है कि चुनाव आयोग के नोटिस के बाद तमाम नेता सतर्क हो जाएंगे। आचार संहिता की पालना बहुत जरूरी है और एक-दूसरे को निशाना बनाते हुए सावधानी भी जरूरी है। मशहूर शायर बशीर बद्र का चर्चित शेर है, *दुश्मनी जमकर करो लेकिन ये गुंजाइश रहे/ जब कभी हम दोस्त हो जाएं तो शर्मिंदा न हों।* आज राजनीति में इस शेर की प्रासंगिकता बढ़ जानी चाहिए। अपने देश में राजनीति और राजनेताओं का जो स्तर है, उसमें किसी को भी किसी की जरूरत पड़ सकती है।

चुनाव आयोग के नोटिस के बाद तमाम नेता सतर्क हो जाएं। आचार संहिता की पालना जरूरी है और एक-दूसरे को निशाना बनाते हुए सावधानी भी।

राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के बावजूद एक सामान्य व्यावहारिकता भी होती है, जिसका ध्यान सभी को रखना चाहिए। जो लोग भी अपशब्दों या आक्रामक टिप्पणियों का सहारा ले रहे हैं, उनकी निंदा होनी चाहिए। कानून हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है, पर अभिव्यक्ति की सीमा भी बता देता है। इसमें कोई शक नहीं कि एक-दूसरे की कमियों पर कटाक्ष का यह श्रेष्ठ समय है और इसके प्रति नेताओं में सहनशीलता होनी चाहिए। चुनाव के समय कई कार्यकर्ता और छोटे नेताओं के गलत बयानों को तो लोग ही अपने स्तर पर नजरअंदाज कर देते हैं, पर जब कोई बड़ा नेता तल्खी के साथ मर्यादा की दहलीज लांघता है, तो चर्चा या शिकायत से बचा नहीं जा सकता। चुनाव आयोग को पूरी त्वरा के साथ शिकायतों का संज्ञान लेना चाहिए, अगर ऐसी शिकायतों को हल्के से लिया जाएगा, तो राजनीति आने वाले दिनों में अपने दामन को और गंदा कर लेगी।

बहरहाल, इधर जिस तरह के शब्दों का इस्तेमाल प्रधानमंत्री के लिए किया जा रहा है, उससे दुख भी होता है और चिंता भी। भाजपा ने राहुल गांधी पर चुनावी लाभ के लिए भारत के लोगों के मन में भाषायी और सांस्कृतिक विभाजन पैदा करने की कोशिश करने का आरोप लगाया, तो कांग्रेस ने प्रधानमंत्री को सीधे झूठा करार दिया है। यहां दोहराने की कतई जरूरत नहीं, पहले भी प्रधानमंत्री को ऐसा बहुत कुछ कहा गया है, जिसका परिणाम विपक्षी पार्टियां पिछले अनेक चुनावों में हार के साथ भुगत चुकी हैं। ध्यान रहे, दुनिया देखती और सुनती है, जब देश के प्रधानमंत्री को कुछ कहा जाता है। राजनीति सेवा का क्षेत्र है, यहां एक-दूसरे को नीचा दिखाना नेताओं को शोभा नहीं देता। परिपक्वता आनी चाहिए, राजनीति वह नहीं, जो गुमराह करके जीत दर्ज कर ले, राजनीति वह है, जो देश को सही दिशा में ले जाए।

हिन्दुस्तान Hindustan **75 साल पहले** 26 अप्रैल, 1949

लंका के भारतीय

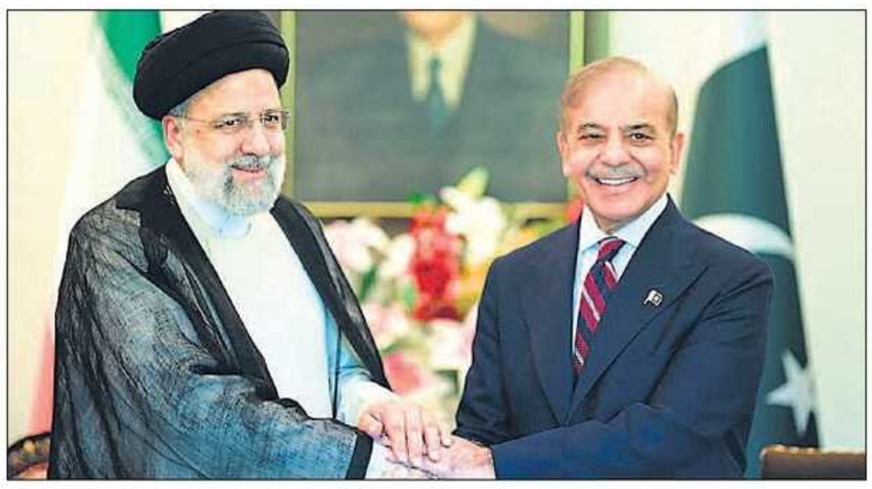

लंका भारत का पड़ोसी देश है। दोनों देशों की सरकार जुदा-जुदा है, किंतु उनके रहने वाले एक-दूसरे से बहुत भिन्न नहीं हैं। उनकी नसों में एक ही खून बहता है और उनके बीच सांस्कृतिक संबंध अत्यन्त घनिष्ठ रहे हैं। तब क्या कारण है कि जो भारतीय लंका में जाकर बस गये हैं, उनको लंका की सरकार से शिकायत हो और वे यह अनुभव करें कि उनके साथ भेदभाव-पूर्ण व्यवहार किया जा रहा है। लंका के वर्तमान नेता भारत के साथ दोस्ती का दम भरते हैं, तब तो उन्हें लंका के भारतीयों के अधिकारों के प्रति विशेष रूप से जागरूक होना चाहिए। किंतु वस्तु-स्थिति इससे उल्टी प्रतीत होती है। लंका के भारतीयों की कांग्रेस का हाल ही में जो अधिवेशन हुआ है, उसकी कार्रवाई से यह स्पष्ट हो जाता है कि लंका के भारतीयों में कितना तीव्र असन्तोष है और वे किस हद तक जाने को तैयार हैं।

लंका की सरकार ने दो कानून बनाये हैं। एक का नाम लंका नागरिकता कानून और दूसरे का भारत और पाकिस्तान निवासी नागरिकता कानून है। लंका के भारतीयों की कांग्रेस ने भारतीयों से अनुरोध किया है कि वे इन दोनों कानूनों की उपेक्षा करें और उनके मातहत नागरिकता का हक प्राप्त करने के लिए नामों की जो रजिस्ट्री होने वाली है, उसका बहिष्कार करें। नामों की इस रजिस्ट्री को कांग्रेस के प्रस्ताव में अपमानकारक, भेदभाव-मूलक, समाज-विरोधी, अव्यावहारिक और हास्यास्पद बताया गया है। ये विशेषण लंका के भारतीयों के तीव्र असन्तोष को ही व्यक्त करते हैं। इन कानूनों के अनुसार लंका के भारतीयों को नागरिकता के अधिकार प्राप्त करने की जो थोड़ी-बहुत सुविधा मिली है, उसे उन्होंने ठुकरा दिया है। इसके बाद लंका की सरकार के लिए यह गंभीर रूप से विचारणीय हो जाता है कि जिस व्यवस्था को लंका के भारतीय अन्यायपूर्ण समझते हैं, उसे वह जारी रखे या उसमें आवश्यक संशोधन करे।

लंका के भारतीयों की मांग सीधी-सादी है। वे लंका में अपने लिए नागरिकता के सम्पूर्ण अधिकार चाहते हैं। वे नहीं चाहते कि रजिस्ट्री द्वारा नागरिक बनने वालों और वंशानुगत नागरिकों में कोई भेदभाव किया जाये। नागरिकता की सीधी सी कसौटी यह हो कि कोई लंका में रह रहा है अथवा नहीं और यह घोषणा करने को तैयार है अथवा नहीं कि वह स्थायी रूप से लंका में रहने को तैयार है।

ईरान-पाकिस्तान का नया याराना

सुशांत सरीन | सीनियर फेलो, ऑब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन

यहां स्कैन करें

दोनों देशों के बीच ताजा बातचीत तनाव कम करने की कोशिश है, पर इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच प्रगाढ़ दोस्ती हो जाएगी, जैसा बताने की कोशिश हो रही है।

ईरानी राष्ट्रपति इब्राहिम रईसी के तीन दिवसीय पाकिस्तान दौरे और दोनों देशों के बीच बातचीत के बाद संयुक्त वक्तव्य जारी होने का कदापि यह अर्थ नहीं कि दोनों के बीच दोस्ती बहुत ज्यादा बढ़ गई है। दोनों के बीच रिश्तों में अभी भी ऐसे तनाव हैं, जिन्हें संयुक्त वक्तव्य से पहले सुलझाया नहीं गया। वैसे, दोनों देशों के बीच कई मुद्दों पर समन्वय है, जैसे मजहब, तहजीब, बिरादर मुल्क के नाम पर दोनों एक मंच पर नजर आते हैं, लेकिन बहुत से मुद्दों पर बुनियादी कश्मकश है। पाकिस्तान में सुन्नी बहुमत है और ईरान में शिया। पाकिस्तान में सुन्नी कट्टरपंथ को बढ़ावा दिया जाता है, तो ईरान में शिया कट्टरपंथ को। पाकिस्तान में शियाओं का दमन होता है और ईरान में सुन्नियों का। जहां तक राजनीतिक, कूटनीतिक संबंध का सवाल है, तो दोनों देशों के बीच परस्पर सहमति नहीं है।

गौर कीजिए, फिलहाल सऊदी अरब और ईरान ने आपस में एक समझौता कर रखा है, पर दोनों के बीच लड़ाई लगभग 1,500 साल पुरानी है। यह अरब और अजम (बाहरी) की लड़ाई है; शिया और सुन्नी की लड़ाई है, इस्लाम पर किसका दबदबा होगा, इसकी लड़ाई है। मात्र एक संधि कर लेने से लड़ाई नहीं सुलझी है। यहां सऊदी अरब का जिक्र इसलिए जरूरी है, क्योंकि पाकिस्तान सऊदी अरब पर बहुत ज्यादा निर्भर है। पाकिस्तान के रिश्ते ईरान के साथ तभी खराब हुए, जब ईरान और सऊदी अरब के बीच रिश्ते खराब हुए और तब पाकिस्तान शिकारगाह बन गया। इस वजह से पाकिस्तान में शिया-सुन्नी फसाद भी फैले।

बीती जनवरी में ही ईरान और पाकिस्तान के बीच तनाव इस कदर बढ़ गया था कि ईरान ने पाकिस्तान पर मिसाइल दागे व पाकिस्तान ने भी मिसाइल से जवाब दिया। पाकिस्तान से दहशतगर्द ईरान जाकर हमले करते हैं और ईरानी सुरक्षा बल ने कई बार पाकिस्तानी सीमा में अंदर जाकर दहशतगर्दों का मुकाबला किया है। हालांकि, ऐसे मामलों को पहले दबा दिया जाता था, पर इस बार जनवरी में जो हुआ, वह प्रत्यक्ष तौर पर हुआ, दोनों ने एक-दूसरे के ऊपर मिसाइल दागे। बाद में, दोनों मुल्कों ने महसूस किया कि उनके आपस में जो तनाव है, उसमें इजाफा नहीं करना चाहिए, पहले से ही दोनों मुल्कों के समक्ष संघर्ष के अनेक मुद्दे हैं।

दोनों देशों के बीच ताजा बातचीत व संयुक्त वक्तव्य तनाव कम करने की कोशिश है, मगर इसका अर्थ यह नहीं कि दोनों के बीच प्रगाढ़ दोस्ती हो जाएगी, जैसा कि बताने की कोशिश हो रही है। दोनों देशों ने यह बात की है कि हमें परस्पर व्यापार बढ़ाना चाहिए, तय किया गया है कि अगले पांच साल में परस्पर व्यापार को 10 अरब डॉलर तक ले जाएंगे, पर ऐसा कैसे होगा? दोनों मुल्क एक-दूसरे को क्या बेचेंगे, क्या खरीदेंगे? इसका जवाब नहीं दिया गया है। ईरान पर अमेरिकी प्रतिबंध भी लगे हुए हैं, तब पाकिस्तान उसके साथ अपने व्यापार को कितना बढ़ा सकता है? दोनों देशों के बीच एक मुद्दा गैस-पाइपलाइन का है। गैस पाइपलाइन परियोजना में पहले भारत भी था, पर उसने अक्लमंदी की और समझौते से अलग हो गया। अब यह सिर्फ पाकिस्तान-ईरान के बीच का पाइपलाइन है। समस्या यह है कि पाकिस्तान के पास पैसे नहीं हैं। दुनिया में कोई भी पाकिस्तान को पैसे नहीं देगा, क्योंकि ईरान पर प्रतिबंध है। एक आशंका यह भी रहेगी, मान लीजिए, ईरान से संबंध बढ़ाने पर पाकिस्तान पर भी प्रतिबंध लग जाए, तो क्या पाकिस्तानी अर्थव्यवस्था नुकसान झेल पाएगी? अब पाकिस्तान इसी कोशिश में है कि ईरान के साथ भी संबंध बढ़ाए और अमेरिका को भी भरमाए रखे। उसे लगता है कि बीच का कोई रास्ता निकल आएगा। फलस्तीन के मुद्दे पर भी पाकिस्तान ने काफी कड़ी मुद्रा अख्तियार कर रखी है, जबकि अरब के ज्यादातर मुल्क उतने मुखर नहीं हैं। पाकिस्तान ने अगर फलस्तीन के मामले में ईरान की तरह सीधे हस्तक्षेप किया, तो समस्या हो जाएगी।

इसके बाद आतंकवाद का विषय आता है। संयुक्त वक्तव्य में कहा गया है कि दोनों देश आतंकी गुटों पर प्रतिबंध लगाएंगे। बोलने के लिए यह आसान है, पर यहां सवाल है कि आप किस गिरोह को आतंकी मानते हैं? पाकिस्तान मानता है कि बहुत सारे बलोच स्वतंत्रता सेनानी हैं, जिन्होंने ईरान में शरण ले रखी है। क्या ईरान इन पर प्रतिबंध लगाएगा? आगामी दिनों में ईरान शायद उनकी लगाम कुछ कसेगा, पर देश से पूरी तरह खदेड़ेगा नहीं, क्योंकि ईरान अभी भी पूरी तरह से पाकिस्तान पर यकीन नहीं करता है। ठीक यही बात पाकिस्तान के साथ है। ईरान मानता है कि उसके यहां बहुत सारी दहशतगर्द तंजीमें हैं, जो पाकिस्तान से संचालित हैं, उन्हें पाकिस्तान सरकार की शह हासिल है। इन तंजीमों को इजरायल और अमेरिका से भी मदद मिली हुई है। पाकिस्तान भी अपने यहां मौजूद ईरान विरोधी आतंकियों को पूरी तरह खत्म नहीं करेगा, क्योंकि ऐसा करने पर ईरान के मामले में मौका पड़ने पर वह कमजोर हो जाएगा। ऐसे में, कुल मिलाकर, दोनों ही देशों के लिए आतंकवादियों के खिलाफ ईमानदारी से लड़ने की बात फिलहाल कागज से बाहर आती नहीं दिखती।

अब कश्मीर की बात करें, तो जब साल 2019 में कश्मीर संबंधी संविधान संशोधन हमने किया, तब ईरान के सुप्रीम लीडर खामेनेई के बहुत से ऐसे बयान आए, जो किसी भी भारतीय को स्वीकार नहीं होने चाहिए। अलगाववादियों का उन्होंने समर्थन किया और भारत के खिलाफ मुहिम चलाई। ईमानदारी से देखें, तो ईरान के साथ भारत के रिश्ते में कुछ कड़वाहट आई है, पर भारत ने इसे बड़ा मुद्दा नहीं बनाया है।

अब जब संयुक्त बयान में कश्मीर का मसला डाल दिया गया है, तब भारत को आपत्ति जरूर होगी और होनी भी चाहिए। भारत को ईरान से बोलना चाहिए कि अगर आप राष्ट्रीय सुरक्षा के मोर्चे पर बार-बार भारत विरोधी मुद्दे उठाएंगे, तो इसका खामियाजा आपको भी भुगतना पड़ेगा। भारत हर पल यही कोशिश करता रहा है कि ईरान का उल्लेख करने की जरूरत न पड़े। अब ईरान अगर संकोच नहीं करेगा, तो हमारे भी हाथ खुल जाएंगे। यह संदेश ईरान को देने की जरूरत है।

भारत को चौकन्ना रहना चाहिए। अंततः एक बात उभरकर आती है कि पूरे खित्ते में री-अलायमेंट यानी पुनः मोर्चाबंदी हो रही है। इसमें एक चीज नजर आती है कि रूस, चीन, पाकिस्तान, ईरान कहीं न कहीं एक मंच पर आ रहे हैं। इनके बीच नया समीकरण बन रहा है। रूस के साथ हमारी गहरी मित्रता है, लेकिन रूस अगर किसी ऐसे समूह में शामिल होता है, तो भारत के लिए चिंता का विषय है। संतुलन बनाने के लिए भारत को कुछ करना पड़ेगा। आंखें खुली रखनी चाहिए।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

कुवैत की अरबी आबोहवा में अब रोज गूंजने लगी हिंदी

यहां स्कैन करें

उमेश चतुर्वेदी | वरिष्ठ पत्रकार

इसे संयोग कहें या फिर कुछ और, जिस समय तमिलनाडु और केरल के चुनावी माहौल में हिंदी पर सवाल उठाने की सियासी कोशिश हो रही थी, ठीक उसी वक्त अरब संसार के आसमान में हिंदी की तरंगें छाने की तैयारी में जुटी थीं। पेट्रो डॉलर के लिए मशहूर कुवैत की रेगिस्तानी आबोहवा में हिंदी गूंजने लगी है। इसकी शुरुआत बीते 21 अप्रैल को हुई। कुवैत रेडियो ने रोजाना रात साढ़े आठ से नौ बजे के बीच एफएम रेडियो पर हिंदी में प्रसारण शुरू किया है।

अपनी जुबान की कीमत तब बेहतर समझ आती है, जब हम अपनी माटी से दूर होते हैं। भाषा के स्तर पर जब चौतरफा अपरिचित सा माहौल हो, वहां अगर रेडियो पर अपनी जुबान सुनाई दे जाए, तो उस वक्त कानों के जरिये मन-मस्तिष्क तक पहुंची तरंगों का आनंद वही समझ सकता है, जिसे अपनी जुबानी मिठास का अनुभव हो। कुवैत ही नहीं, अरब के अन्य देशों में भी समूचे भारत के लोग नौकरियां कर रहे हैं, जिनमें हिंदीभाषियों की संख्या भी खूब है, पर उनकी अपनी बोली-बानी में रेडियो या टीवी का प्रसारण नहीं हो रहा है। कुवैत की सरकार ने अपने हिंदीभाषी कर्मचारियों के सांस्कृतिक दर्द को समझा है और हिंदी में रेडियो प्रसारण के जरिये उस दर्द पर राहत का फाहा रखने की कोशिश की है।

कुवैत सरकार ने अपने हिंदीभाषी कर्मचारियों के सांस्कृतिक दर्द को समझा है और दर्द पर राहत का फाहा रखने की कोशिश की है।

साल 2022 में सूचना के अधिकार के तहत विदेश मंत्रालय ने बताया था कि विदेश में करीब एक करोड़ 34 लाख भारतीय हैं, जिनमें से करीब 66 फीसद लोग अरब देशों में हैं। इनमें सबसे ज्यादा संख्या संयुक्त अरब अमीरात में है। फिर बहरीन, कुवैत या सऊदी अरब में रहते हैं। खाड़ी देशों में पाकिस्तान और बांग्लादेश के भी लोगों की अच्छी-खासी तादाद है। उनके बीच आपसी संवाद की भाषा हिंदी ही है।

वैसे दुबई में पहले से ही हिंदी में प्रसारण जारी है। वहां कड़क, रेडियो 4, सिटी रेडियो, टाक, सुनो एफएम और बिग एफएम अपना प्रसारण पहले से ही जारी है। ज्यादातर रेडियो चैनल हिंदी के साथ मलयालम, तमिल, बांग्ला आदि में प्रसारण करते हैं। दुबई के अलावा दूसरे अरब देशों में हिंदी में प्रसारण नहीं है। कुवैत दूसरा देश है, जिसने हिंदी प्रसारण की शुरुआत की है।

अरब देशों की ख्याति अपने कठोर कानूनों और सबसे अलग सांस्कृतिक पहचान के लिए रही है। इन देशों में विदेशी संस्कृतियों के लिए गुंजाइश कम रही है। दुबई इसका अपवाद रहा है। वैसे अब दूसरे अरब देश भी मानने लगे हैं कि उनके यहां जो प्रवासी कामगार हैं, वे उनकी अर्थव्यवस्था के अनमोल हिस्से हैं, इसलिए उनकी सहूलियतों और संस्कृतियों का ध्यान रखा जा रहा है। अरब देशों में बदलती सांस्कृतिक बयार का ही प्रतीक है कि अब वहां मंदिर भी बनने लगे हैं और उनकी भव्य प्राण-प्रतिष्ठा भी होने लगी है। यह बदलाव की बयार का ही असर है कि सऊदी अरब में भी जुलाई से हिंदी में प्रसारण की तैयारी है।

अरब देशों से सटे ईरान का तेहरान रेडियो हिंदी और उर्दू में अरसा पहले से प्रसारण करता रहा है, लेकिन उसके प्रसारणों की पहुंच बहुत कम रही है। ऐसे में, दुबई के बाद कुवैत की वायु तरंगों में हिंदी का तरंगित होना नए युग की शुरुआत है।

वैश्विक उपनिवेशवाद और अर्थव्यवस्था में दबदबे के चलते डॉलर के साथ अंग्रेजी का वर्चस्व अरब देशों में भी रहा है। उसके बीच हिंदी का धीरे-धीरे स्नेहिल जगह बनाना भारतीयता का भी विस्तार है। रेगिस्तान में जॉर्डन और तुर्की ऐसे देश हैं, जहां यूरोप का ज्यादा असर है। इन देशों में भी भारत के लोग काफी संख्या में हैं। उम्मीद की जानी चाहिए कि आने वाले दिनों में वहां की तरंगों पर भी हिंदी अपनी जगह बनाने में कामयाब होगी।

रेगिस्तानी इलाके में ठंडी हवा का झोंका जिस तरह जिंदगी का प्रतीक होता है, चौतरफा विदेशी जुबान के बीच हिंदी की ध्वनियों का गूंजना भी कुछ वैसा ही है। दुबई और कुवैत में आधिकारिक रूप से गूंज रही हिंदी पराये माहौल में अपनेपन की नई इबारत लिखेगी। सरहद के पार हिंदी कुछ राज्यों की भाषा की नहीं, बल्कि समग्र भारतीयता की प्रतीक है। इसलिए रेगिस्तान की सूखी रेत पर हिंदी की प्राण बूंदों का स्वागत भारतीय समाज द्वारा किया जाना स्वाभाविक ही है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

सत्य को स्वीकारना सीखें

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से शिक्षित हिंदुओं के भौतिकता की ओर मुड़ने जैसी अस्थायी घटना बहुत कम महत्व की है। ऐसी अवधियां हमेशा रही हैं, जब राष्ट्रों, महाद्वीपों और संस्कृतियों के मन भौतिकता की ओर तथा आध्यात्मिक विश्वास से परे मुड़े हैं।... ये लहरें मानव विकास में एक निश्चित आवश्यकता के कारण आती हैं- पुराने स्वरूपों के बंधन को नष्ट करना और नए सत्य या सत्य के नए स्वरूपों के लिए एक क्षेत्र छोड़ देना।

मैं मानव जाति और विशेष रूप से भारत के आध्यात्मिक इतिहास को एक दैवी उद्देश्य के निरंतर विकास के रूप में मानता हूं, न कि किसी ऐसी पुस्तक के रूप में, जो बंद हो चुकी हो और जिसकी पंक्तियों को सतत दोहराया जाए। ...मेरा उद्देश्य मानवता के लिए नए या पुराने किसी धर्म का प्रचार-प्रसार करना नहीं है। एक मार्ग, जो अभी तक अवरुद्ध है, उसे खोलना है, किसी धर्म का प्रवर्तन नहीं, यही इस विषय की मेरी संकल्पना है। धर्मांधता में कुछ भी गौरवपूर्ण नहीं है, प्रयोजन की कोई गौरवता नहीं है, यद्यपि प्रयोजन का उत्कट उत्साह हो सकता है। धार्मिक कट्टरता ऐसी वस्तु है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से अकुलीन और ज्ञानशून्य है और प्रायः अपने कार्य में भयानक, क्रूर व नीच।

मानव तर्क एक बहुत सुविधाजनक और निबाहने वाला उपकरण है और वह उस गोलाकार में ही कार्य करता है, जो उसके लिए पक्षपात व पूर्वाग्रह द्वारा निर्धारित कर दिया जाता है। राजनीतिज्ञ कपटता से तर्क करते हैं और उनमें अपने तर्कों के परिणामों को लागू करने की शक्ति होती है, ताकि वे दुनिया के मामलों को दूषित बना सकें; बुद्धिजीवी तर्क करते हैं और वही प्रदर्शित करते हैं, जो उनका मस्तिष्क उन्हें दिखाता है, जो हमेशा सत्य से बहुत दूर रहता है, क्योंकि यह सामान्यतया उनकी बौद्धिक प्राथमिकताओं व मस्तिष्क के अंतर्जात या शिक्षा द्वारा मन में बैठे दृष्टिकोण से निर्णीत होता है; पर जब वे सत्य को देखते भी हैं, तब भी उसे लागू करने की उनमें शक्ति नहीं होती और इस तरह अंधी शक्ति व देखने वाली नपुंसकता के बीच संसार चलता रहता है।

युद्ध और विजय जैव प्रकृति का भाग हैं, उनके लिए

धर्मांधता में कुछ भी गौरवपूर्ण नहीं है। धार्मिक कट्टरता ऐसी वस्तु है, जो वैज्ञानिक दृष्टि से अकुलीन और ज्ञानशून्य है और प्रायः अपने कार्य में भयानक, क्रूर तथा नीच है।

इस या उस जगह के लोगों को दोष देने का कोई मतलब नहीं। जिसके पास भी शक्ति और अवसर है, ऐसा प्रत्येक व्यक्ति उसे करता है।... यदि वह लाभप्रद नहीं होता, तो मैं समझता हूं, कोई भी उसे नहीं करता। इंग्लैंड भारत के धन लूटकर अमीर बन गया। फ्रांस अनेक चीजों के लिए अफ्रीकी उपनिवेशों पर निर्भर रहा। प्रत्येक उन बलों द्वारा धकेला जाता है, जो शासकों और लोगों के मस्तिष्क अपने को पूरा करने के लिए उपयोग में लाते हैं। जब तक मानव स्वभाव बदलता नहीं है, नैतिक उपदेशों का परिणाम इसे नहीं रोक पाएगा।

श्री अरविंद

डी वाई चंद्रचूड़ | प्रधान न्यायाधीश, भारत

अपने देश के लिए पांच साल में पांच मिनट निकालिए। इस गर्व के साथ मतदान कीजिए कि मेरा वोट, मेरी आवाज! नागरिकता के सबसे महत्वपूर्ण कर्तव्यों में से एक कर्तव्य है अपना वोट डालना।

सेलिब्रिटी की थोपी गई उम्मीदवारी घातक

इस आम चुनाव में कई राजनीतिक पार्टियों ने अपने-अपने चुनाव-चिह्न पर फिल्मी अभिनेता-अभिनेत्रियों, खिलाड़ियों को मैदान में उतार दिया है। यह प्रवृत्ति नई नहीं है, लेकिन अब जिस पैमाने पर यह होने लगा है, उससे एक गंभीर सवाल पैदा हो गया है कि आखिर किसी संसदीय क्षेत्र में दशकों खपा देने वाले नेता-कार्यकर्ता के बजाय ऊपर से उतार दी गई कोई हस्ती वहां की जन-अपेक्षाओं के साथ कितना न्याय करेगी? प्रतिनिधि-मूलक लोकतंत्र में नेतृत्व गढ़ने की अवधारणा क्या इससे खोखली नहीं होती? मैं पूर्वी दिल्ली संसदीय क्षेत्र का बाशिंदा हूं। साल 2019 में यहां से भाजपा ने तत्कालीन सांसद महेश गिरी का टिकट काटकर अचानक क्रिकेटर गौतम गंभीर को उम्मीदवार बना दिया। निस्संदेह, महेश गिरी के काम-काज से भी लोगों को शिकायतें थीं, मगर गौतम गंभीर तो इलाके के लोगों के लिए दुर्लभ ही हो गए। नतीजतन, पार्टी को इस बार भी उम्मीदवार बदलना पड़ा है।

यह सिर्फ भाजपा की कहानी नहीं है, बल्कि सभी दलों के ऐसे लोगों का यही हाल है। कांग्रेस के नवजोत सिंह सिद्धू तो एक समय पार्टी के पंजाब प्रदेश के अध्यक्ष थे, मगर आज कहां हैं? दरअसल, लोगों के दुख-सुख और सेवा से इन नेताओं को कोई मतलब नहीं, इन्हें बस किसी पार्टी के समर्थन आधार पर अपनी लोकप्रियता भुनाकर संसद में पहुंचने की लालसा होती है। दुख की बात यह है कि ऐसे अगंभीर लोगों को संसद में भेजने वाली पार्टियां अपने कृत्य पर लज्जित नहीं होतीं! संसद कोई क्रीड़ा-स्थल या रंगमंच नहीं है, बल्कि 140 करोड़ लोगों के भाग्य का फैसला करने वाली सर्वोच्च पंचायत है। इसमें पहुंचने वाले सेलिब्रिटी सांसदों को अपने संसदीय क्षेत्र की समस्या तो छोड़िए, उसकी चौहद्दी तक पता न हो, तो क्या यह लोकतंत्र व संविधान का मजाक नहीं है?

अभिनेताओं-खिलाड़ियों या गायक-गायिकाओं के राजनीति में आने या चुनाव लड़ने से कोई गुरेज नहीं है, मगर उन्हें राजनीति करनी है, तो उसमें पूरी तरह से उतरें। उन्हें पांच साल तक पार्टी विशेष के लिए बतौर कार्यकर्ता काम करना चाहिए या निजी तौर किसी चुनाव क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए संघर्ष करना चाहिए। बरसाती मेंढक की तरह अचानक टपककर वे संविधान की मूल भावना का अपमान करते हैं। इस बार चुनाव लड़ रहे कई सेलिब्रिटी उम्मीदवारों को यह तक नहीं पता कि जिस संसदीय क्षेत्र से वे चुनाव लड़ रहे हैं, वहां की सबसे बड़ी समस्या क्या है? संभव है, वे पार्टी या गठबंधन की लोकप्रियता के कारण जीत जाएं, मगर उन क्षेत्रों की जनता पांच साल के लिए ठगा हुआ ही महसूस करेगी।

विप्लव सैनी, टिप्पणीकार

अनुलोम-विलोम
चुनाव में सेलिब्रिटी

उन्हें भी राजनीति में आने का पूरा अधिकार

एक परिपक्व लोकतंत्र अपने किसी भी योग्य नागरिक को चुनाव लड़ने से हतोत्साहित नहीं करता और यह सुखद है कि भारतीय लोकतंत्र के संस्थापकों ने हमारे संविधान में किसी के साथ किसी किस्म का भेदभाव नहीं किया। सबको समान मतदान के अधिकार मिले। ऐसे में, कुछ लोगों को क्रिकेटरों और हीरो-हीराइनों का चुनाव लड़ना खटक रहा है। उन्हें सेलिब्रिटी नेताओं के सेवा-भाव पर संदेह है। मगर यह आपत्ति निरर्थक है, क्योंकि वे भी हमारे देश के नागरिक हैं और इसके सुख-दुख के समान रूप से साझीदार भी, तो वे क्यों नहीं इसकी विधायिकाओं में जा सकते?

अमेरिका में भी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन, कैलिफोर्निया के गवर्नर अर्नोल्ड स्वर्जेनेगर जैसे कई नेता फिल्मों ने जुड़े रहे, और वे वहां के महान नेताओं में गिने जाते हैं। दक्षिण भारत में भी एमजीआर, करुणानिधि, जयललिता और एनटीआर ने शानदार राजनीति की। ये सभी न सिर्फ मुख्यमंत्री बने, बल्कि इनकी सरकारों की योजनाएं काफी जन-कल्याणकारी साबित हुईं। अपने-अपने राज्य में इन्होंने विकास का कैसा काम किया, इसकी गवाही इन राज्यों की जीडीपी और प्रति-व्यक्ति आय दे देती है। सबसे खास बात यह कि उन्होंने अपने राजनीतिक विरोधियों का सार्वजनिक रूप से भले जोरदार विरोध किया, पर इनमें से किसी ने अपने प्रतिद्वंद्वी द्वारा शुरू की गई किसी अच्छी योजना को बंद नहीं किया, बल्कि उसे सुधारकर और आगे बढ़ाया। इसलिए सेलिब्रिटी नेताओं की संवेदनशीलता और राजनीतिक समझ पर सवाल नहीं उठाना चाहिए। सुनील दत्त और विनोद खन्ना को देखिए। उन्होंने अपने-अपने दल और संसदीय क्षेत्र के लिए कितना काम किया। वे कोई डायलॉग सुनाकर तो बार-बार नहीं चुने जाते रहे।

निस्संदेह, राजनीतिक पार्टियों पर सवाल उठाया जा सकता है कि वे बॉलीवुड या खेल के मैदान से जब किसी को चुनाव में उतारती हैं, तब क्या उस क्षेत्र विशेष के अपने कार्यकर्ताओं की राय लेती हैं? ऐसी हस्तियों का पहले संगठन के काम में इस्तेमाल क्यों नहीं किया जाता? जैसे, तृणमूल कांग्रेस ने कई खिलाड़ियों, अभिनेता-अभिनेत्रियों को मैदान में उतारा है। लेकिन जिस तरह से उसने क्रिकेटर यूसुफ पठान को बहरामपुर से उम्मीदवार बना दिया, वह सिर्फ और सिर्फ उनकी लोकप्रियता का दोहन है, किसी राजनीतिक प्रतिबद्धता का पुरस्कार नहीं। ऐसे चयन ही संजीदा सेलिब्रिटी को लेकर लोगों के मन में संदेह पैदा कर देता है। लेकिन इसके लिए पार्टियां जिम्मेदार हैं, ऐसे नामचीन नहीं।

विभोर सिंह, टिप्पणीकार